दैनिक जागरण
दौड़ने से पहले हमें चलना सीखना चाहिए

# कश्मीर में नई मुहिम

केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह की अगुआई में मोदी सरकार ने कश्मीरियों का दिल जीतने की जो मुहिम शुरू की है उसमें सफलता मिले, यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है। इसके साथ ही केंद्रीय सत्ता को यह भी सुनिश्चित करना होगा कि कश्मीर में अलगाववादी और पाकिस्तान परस्त तत्वों पर लगाम लगे, क्योंकि इन तत्वों की सक्रियता पर रोक लगाए बगैर केंद्रीय योजनाओं को जमीन तक पहुंचाने और ऐसा करके कश्मीरियों का दिल जीतने के लक्ष्य को हासिल करना कठिन हो सकता है। इससे इन्कार नहीं कि पिछले कुछ समय में अलगाववादी तत्वों पर एक हद तक लगाम लगी है, लेकिन फिलहाल इस नतीजे पर नहीं पहुंचा जा सकता कि उनका दुस्साहस पस्त पड़ चुका है। हुर्रियत कांफ्रेंस सरीखे शरारती संगठनों की आतंक परस्ती और पाकिस्तान भक्ति पहले जैसी नजर आ रही है। इसके अलावा इसकी भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि कश्मीर घाटी में मजहबी कट्टरता और आतंकवाद को नए सिरे से हवा देने की कोशिश की जा रही है। पिछले दिनों अल-कायदा की ओर से दी गई गीदड़ भभकी यही बताती है कि कश्मीर घाटी को जिहादी आतंकवाद का गढ़ बनाने की कोशिश हो रही है। ध्यान रहे कि ऐसी कोशिश पहले भी होती रही है और इसका प्रमाण यह है कि वहां रह-रहकर खूंखार आतंकी संगठन आइएस के काले झंडे लहराए गए हैं। इस सबके अलावा यह तो जग जाहिर ही है कि पाकिस्तान कश्मीर को अशांत एवं अस्थिर रखने की अपनी हरकतों से बाज नहीं आ रहा है।

अमन पसंद आम कश्मीरियों का दिल जीतने के लक्ष्य को हासिल करने में मुख्यधारा के राजनीतिक दल भी बाधक बन सकते हैं। इसकी पुष्टि तब हुई थी जब नेशनल कांफ्रेंस और पीडीपी ने पंचायत चुनाव के बहिष्कार का फैसला किया था। यह फैसला इस बहाने किया गया था कि केंद्र सरकार अनुच्छेद 35-ए एवं अनुच्छेद 370 को हटाने के इरादे जाहिर कर रही है। इन राजनीतिक दलों को इस पर भी आपत्ति थी कि सुप्रीम कोर्ट अनुच्छेद 35-ए की संवैधानिकता पर सुनवाई क्यों कर रहा है? अब तो सुप्रीम कोर्ट अनुच्छेद 370 पर भी सुनवाई करने को तैयार है। देखना है कि अब नेशनल कांफ्रेंस और पीडीपी क्या रवैया प्रदर्शित करती हैं? उनका रवैया जो भी हो, इस बात को ओझल नहीं किया जा सकता कि फिलहाल ये दोनों दल यह मांग करने में लगे हुए हैं कि जम्मू-कश्मीर विधानसभा के चुनाव जल्द हों। निःसंदेह राज्य में विधानसभा चुनाव कराने ही होंगे, लेकिन बेहतर यह होगा कि पहली प्राथमिकता वहां के हालात सुधारने को दी जाए। हालात सुधार कर ही उस माहौल का निर्माण किया जा सकता है जिसमें केंद्रीय योजनाओं पर आसानी से अमल किया जा सके। यह सही है कि राज्यपाल शासन विभिन्न क्षेत्रों में नए-तौर तरीकों का इस्तेमाल करने में लगा हुआ है, लेकिन अभी भी बहुत कुछ बदलने की जरूरत है। उम्मीद की जाती है कि राज्यपाल के नए सलाहकार फारूक खान के आने से स्थितियां बदलेंगी। वे बदलनी भी चाहिए। वास्तव में जम्मू-कश्मीर में राज्यपाल शासन में वृद्धि को केंद्र सरकार को एक अवसर में तब्दील करना चाहिए, क्योंकि इसके आसार कम हैं कि वहां के राजनीतिक दल हालात बदलने में मददगार साबित होंगे।

# सराहनीय पहल

उत्तराखंड सरकार की देश के सभी हिमालयी राज्यों को एक मंच पर लाने की पहल सराहनीय है। यह जरूरत भी है। लंबे अरसे से हिमालयी राज्यों का साझा मंच बनाने की पैरवी की जा रही है। दरअसल पूरे हिमालयी क्षेत्र का पारिस्थितिकी तंत्र बेहद संवेदनशील है। इस तंत्र पर देश के बड़े भू-भाग की पर्यावरणीय सुरक्षा का दारोमदार है। इन राज्यों में उत्तराखंड की स्थिति ज्यादा संवेदनशील है। यह हिमालयी क्षेत्र एशिया का सबसे बड़ा वाटर टैंक माना जाता है। गंगा और यमुना जैसी बड़ी राष्ट्रीय नदियों का उद्गम स्रोत भी उत्तराखंड है। अपने कुल भू-भाग के करीब 71 फीसद वन क्षेत्र और बड़े पारिस्थितिकी तंत्र की बदौलत यह राज्य पूरे देश को करीब तीन लाख करोड़ से अधिक की पर्यावरणीय सेवाएं मुहैया करा रहा है। इसमें करीब एक लाख करोड़ की हिस्सेदारी वनों की आंकी गई है। देश को बड़ा योगदान देने के बावजूद पर्यावरणीय बंदिशों ने उत्तराखंड की अपनी प्रगति के साथ ही आम लोगों की खुशहाली को भी सीमित कर दिया है। पर्वतीय क्षेत्र होने की वजह से अवस्थापना विकास कार्यों और निर्माण कार्यों की लागत मैदानी राज्यों की तुलना में ज्यादा पड़ रही है। इस वजह से शत-प्रतिशत केंद्रपोषित योजनाओं में भी राज्य को अपने पल्ले से धन खर्च करने को मजबूर होना पड़ रहा है। कमोबेश सभी हिमालयी राज्यों के हालात इसी तरह हैं। बुनियादी सुविधाओं का ढांचा खड़ा करने में राज्यों के पसीने छूट रहे हैं। आर्थिक संसाधनों के पिछड़ेपन और सीमित होने के कारण ही हिमालयी राज्यों को केंद्र सरकार की ओर से विशेष दर्जा दिया गया है। हालांकि इस विशेष दर्जे को छीनने की कोशिशें भी होती रही हैं। इन राज्यों के सामने अन्य बड़ी चुनौतियां हिमालयी संस्कृति, पर्यावरण, आर्थिकी, सामाजिकी समेत सरोकारों को बचाए रखने की भी है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी भी हिमालय के लिए अलग मंत्रालय के गठन पर अपनी सहमति जता चुके हैं। नीति आयोग में भी अलग हिमालयी प्रकोष्ठ अस्तित्व में आ चुका है। उम्मीद की जानी चाहिए कि हिमालयी राज्यों की संयुक्त आवाज राष्ट्रीय नीति नियोजन का हिस्सा बनेगी।

# दुनिया को मुश्किल में डालते ट्रंप

**पॉल क्रुगमैन**

ट्रेड वार में कभी कोई स्पष्ट विजेता नहीं बनता, लेकिन विश्व अर्थव्यवस्था पर उनके निशान अक्सर लंबे समय तक देखे जाते हैं

डोनाल्ड ट्रंप का कहना है कि 'ट्रेड वार बढ़िया है और उसे जीतना आसान होता है।' उनका यह बयान निश्चित रूप से इतिहास की किताबों में दर्ज होगा, मगर यह भी तय है कि वह सही अर्थों में नहीं लिया जाएगा। इसके बजाय यह इराक युद्ध से पहले डिक चेनी की उस भविष्यवाणी की तर्ज पर याद किया जाएगा जिसमें चेनी ने कहा था कि, 'हम तो वास्तव में मुक्तिदाता माने जाएंगे।' ये बयान उस अहंकार और नादानी को दर्शाते हैं जो अक्सर महत्वपूर्ण नीतिगत मामलों पर फैसला लेने में असर दिखाते हैं। हकीकत यही है कि ट्रंप इस ट्रेड वार को जीतने नहीं जा रहे। यह भी सच है कि उनकी प्रशुल्क दरों यानी टैरिफ ने चीन सहित अन्य अर्थव्यवस्थाओं को नुकसान पहुंचाया है, लेकिन उनसे अमेरिका को भी क्षति उठानी पड़ी है। न्यूयॉर्क फेड में अर्थशास्त्रियों ने अनुमान लगाया है कि इसके चलते बढ़ी हुई कीमतों के कारण एक औसत परिवार को सालाना एक हजार डॉलर अधिक खर्च करने पड़ेंगे। यानी लोगों पर आर्थिक बोझ बढ़ेगा। फिर ऐसे कोई संकेत नहीं मिल रहे कि टैरिफ से ट्रंप के अपेक्षित लक्ष्य हासिल हो पा रहे हैं जिनका मकसद दूसरे देशों पर नीतियों में बदलाव के लिए दबाव डालना है।

आखिर ट्रेड वार क्या है? इस जुमले को न तो अर्थशास्त्रियों और न ही इतिहासकारों ने गढ़ा है जिसमें घरेलू राजनीतिक कारणों के चलते कोई देश टैरिफ में बढ़ोतरी करता है जैसा अमेरिका 1930 के दशक से नियमित रूप से करता आया है। ट्रेड वार की स्थिति तभी बनती है जब कोई देश दूसरे देश पर दबाव के जरिये नियंत्रण के मकसद से टैरिफ दरें बढ़ाता है ताकि उसे अपने पक्ष में नीतियां बदलने के लिए मजबूर कर सके। हालांकि इसमें दर्द तो वास्तविक रूप से महसूस हो रहा है, लेकिन नियंत्रण स्थापित होता नहीं दिख रहा। कनाडा और मेक्सिको पर ट्रंप ने इस मकसद से टैरिफ बढ़ाया कि वे उत्तर अमेरिका मुक्त व्यापार अनुबंध यानी नाफ्टा पर नए सिरे से वार्ता के लिए तैयार हो सकें। इस कड़ी में हुआ नया समझौता एकदम पुराने जैसा है जिसमें मैग्निफाइंग ग्लास लगाकर भी कोई नई बात देखने को नहीं मिलेगी। इस नए समझौते को भी अभी तक कांग्रेस की मंजूरी नहीं मिली।

वहीं जी-20 देशों के हालिया सम्मेलन में ट्रंप ने चीन के साथ जारी ट्रेड वार पर विराम लगाने को लेकर सहमति जताई। फिलहाल हम यही कह सकते हैं कि उन्होंने नए टैरिफ को ठंडे बस्ते में डाल दिया है। हालांकि इस समझौते की भाषा बहुत अस्पष्ट है। इस बीच एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि ट्रंप का ट्रेड वार आखिर क्यों नाकाम हो रहा है? एक भीमकाय अर्थव्यवस्था के बगल में मेक्सिको बहुत छोटी सी अर्थव्यवस्था है जिसके बारे में आपको लगेगा और ट्रंप ने तो लगभग मान ही लिया कि उसे धमकाना आसान है। चीन अपने आप में एक आर्थिक महाशक्ति है, लेकिन वह अमेरिका से जितना खरीदता है उसकी तुलना में कहीं अधिक बेचता है तो आपने यही सोचा कि वह अमेरिकी दबाव के आगे कमजोर पड़ जाएगा। तब आखिर ट्रंप अपने आर्थिक मंसूबों में कामयाब क्यों नहीं हो सकते? मेरी नजर में इसके तीन कारण हैं।

अवधेश राजपूत

पहला तो यही विश्वास था कि अमेरिका आसानी से ट्रेड वार जीत सकता है। यह कुछ उसी किस्म का मुगालता था जिसने अमेरिका की ईरान नीति का सत्यानाश कर दिया। अमेरिका में शक्तिशाली पदों पर बैठे तमाम लोग यह हकीकत नहीं समझ पाए कि दुनिया में हम इकलौते ऐसे देश नहीं जिसकी अपनी खास संस्कृति, इतिहास और पहचान है और जिसे अपनी आजादी पर नाज है। अमेरिका रियायतें देने का बहुत अनिच्छुक हो गया जो उसकी नजर में दुनिया के दबंग देशों के लिए खैरात जैसी है। 'रक्षा पर अरबों का खर्च और परोपकार के लिए धेला नहीं' यह खास अमेरिकी भावना तो बिल्कुल नहीं है। खासतौर से यह विचार बहुत ही मूर्खतापूर्ण है कि चीन बाकी देशों के साथ मिलकर ऐसे समझौते पर सहमति बना लेगा जो अमेरिका के लिए बहुत अपमानजनक होगा।

दूसरी बात यही कि टैरिफ के मामले में ट्रंप के रणनीतिकार अतीत के दौर में जी रहे हैं जो आधुनिक अर्थव्यवस्था की वास्तविकताओं से अनभिज्ञ हैं। वे पूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति विलियम मैक्किनले के दौर की यादों में खोए हैं। मगर उस वक्त यह पता होता था कि 'आखिर यह वस्तु कहां बनी?' लेकिन इन दिनों लगभग प्रत्येक विनिर्मित वस्तु वैश्विक वैल्यू चेन से जुड़ी है जो कई देशों की सीमा से गुजरते हुए तैयार होती है।

इसमें बहुत कुछ दांव पर लगा होता है। नाफ्टा में हलचल की संभावनाओं को लेकर अमेरिकी कंपनियां अजीब पसोपेश में हैं, क्योंकि अमेरिकी उत्पादन एक बड़ी हद तक मेक्सिको से होने वाले कच्चे माल की आपूर्ति पर निर्भर है। फिर यह टैरिफ के प्रभाव के गणित को भी गड़बड़ा सकता है, क्योंकि यदि आप चीन में विनिर्मित वस्तुओं पर कर की दर बढ़ाएंगे, लेकिन अगर उनमें बड़े पैमाने पर कोरिया या जापानी कलपुर्जे लगे हों तब भी उनकी असेंबलिंग अमेरिका में स्थानांतरित न होकर वियतनाम जैसे किसी एशियाई देश में ही होगी।

ट्रंप का ट्रेड वार खासा अलोकप्रिय भी है। कई सर्वेक्षणों से यह साबित हुआ है जिसका असर ट्रंप की लोकप्रियता पर भी पड़ रहा है। इससे वह विदेशी पलटवार को लेकर राजनीतिक रूप से खासे संवेदनशील हो गए हैं। चीन भले ही अमेरिका से उतनी खरीदारी न करता हो जितनी वह बिक्री करता है, लेकिन चीन का कृषि बाजार उन किसान बाहुल अमेरिकी राज्यों के लिए बेहद अहम है जिनके वोटों पर पकड़ बनाए रखने की ट्रंप को कड़ी मशक्कत करने की दरकार है। इस तरह ट्रंप जिस ट्रेड वार को आसानी से जीतने की हरसत पाले हुए थे वह एक राजनीतिक युद्ध में तब्दील होता जा रहा है। इस लड़ाई में टिके रहने के लिहाज से भी वह चीनी नेतृत्व की तुलना में कम सक्षम हैं जबकि चीन को भी इसकी तपिश झेलनी पड़ रही है। तब आखिर यह कैसे खत्म होगा? ट्रेड वार में कभी कोई स्पष्ट विजेता नहीं बनता, लेकिन विश्व अर्थव्यवस्था पर उनके निशान अक्सर लंबे समय तक देखे जाते हैं। ऐसी ही एक नाकाम कोशिश अमेरिका ने 1964 में की थी जब टैरिफ के जरिये यूरोप को फ्रोजन चिकन खरीदने के लिए मजबूर किया गया था।

वह ट्रेड वार की एक हल्की-फुल्की कड़ी थी और ट्रंप का ट्रेड वार अतीत के मुकाबले कहीं बड़ा है, लेकिन इसका नतीजा भी संभवतः वही होगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि कुछ विदेशी रियायतों को बंद कर ट्रंप इसे अपनी जीत के रूप में प्रचारित करेंगे, लेकिन इसका असल परिणाम हर किसी की जेब में सेंध लगाने के रूप में निकलेगा। वहीं पुराने व्यापार समझौतों को लेकर ट्रंप के खराब रवैये ने अमेरिका की साख को बुरी तरह प्रभावित करने के साथ ही अंतरराष्ट्रीय कानूनों को भी कमजोर किया है। फिर जिन मैक्किनले का मैंने जिक्र किया था तो टैरिफ ने उन्हें उस समय खासा अलोकप्रिय बना दिया था। इस मसले पर अपने अंतिम भाषण में मैक्किनले ने स्वीकार किया था कि व्यापारिक युद्धों से कोई भला नहीं होता और उन्होंने कारोबारी मामलों में दोस्ताना रिश्तों के साथ सद्भावना की जरूरत जताई थी।

(नोबेल पुरस्कार से सम्मानित लेखक द न्यूयार्क टाइम्स के स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

# चांद को छूने की नई चाहत

सृजन पाल सिंह

चंद्रयान-2 न सिर्फ भारत के तकनीकी विकास की मिसाल बनेगा, बल्कि अन्य ग्रहों पर बसावट में भी एक कड़ी बन सकता है

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) चंद्रयान-2 मिशन के जरिये चंद्रमा की एक नई यात्रा पर निकल चुका है। दुनिया में अंतरिक्ष को खोजने की यह होड़ अक्टूबर 1957 में शुरू हुई थी जब तत्कालीन सोवियत संघ ने स्पुतनिक-1 को अंतरिक्ष की कक्षा में सफलतापूर्वक स्थापित कर एक नए युग का सूत्रपात किया था। स्पुतनिक-1 दो फुट चौड़ा गोला था जो धरती की तरफ रेडियो वेव संचालित करता था। स्पुतनिक-1 अंतरिक्ष में महज तीन सप्ताह तक ही बचा रहा और फिर उसकी बैटरी समाप्त हो गई, परंतु सोवियत संघ के उस छोटे से सैटेलाइट ने विश्व में अंतरिक्ष की होड़ शुरू कर दी जिसमें अमेरिका और रूस प्रमुख प्रतिद्वंद्वी थे। इस प्रतिस्पर्धा के दूसरे चरण में भी सोवियत संघ की जीत तब हुई जब अप्रैल 1961 में यूरी गागरिन अंतरिक्ष में पहुंचने वाले पहले मानव बने, परंतु इस स्पर्धा के प्रमुख चरण में अमेरिकियों ने तब विजय प्राप्त की जब 20 जुलाई, 1969 को नासा ने दो अमेरिकी अंतरिक्ष यात्रियों को चंद्रमा पर पहुंचा दिया। उस मिशन का नाम था अपोलो-11 और इसके बाद कुल 12 व्यक्तियों ने चंद्रमा पर कदम रखा। ये सभी अमेरिकी थे। 1972 में अपोलो-17 के साथ नासा ने चंद्रमा पर अपने मिशन को विराम दे दिया।

अब अपोलो-11 के पूरे पचास साल बाद भारत का इसरो चांद पर अपना सबसे महत्वाकांक्षी मिशन चंद्रयान-2 शुरू कर रहा है। चंद्रयान-2 धरती से चांद तक की 3,84,000 किलोमीटर यात्रा की शुरुआत 15 जुलाई को अलसुबह 2 दो बजकर 51 मिनट पर कर चुका है। चंद्रयान-2 के तीन प्रमुख हिस्से हैं। पहला लगभग 2400 किलोग्राम का ऑर्बिटर जो चंद्रमा की कक्षा में स्थापित होकर उसका चक्कर लगाएगा। दूसरा हिस्सा है लैंडर जिसका नाम 'विक्रम' रखा गया है। यह नाम इसरो के संस्थापक और उसके पहले प्रमुख डॉ. विक्रम साराभाई के सम्मान में है। जब ऑर्बिटर चंद्रमा की कक्षा में सफलतापूर्वक स्थापित हो जाएगा तब यह 1500 किलोग्राम का लैंडर विक्रम उससे अलग हो जाएगा। फिर वह चंद्रमा के आकाश को सटीकता से भेदते हुए उसके धरातल पर पहुंच जाएगा। ऐसा करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक होगा कि चंद्रमा पर उतारते समय उसकी गति नियंत्रित रहे जिससे कि उसे कोई क्षति न पहुंचे। वह बहुत ही नाजुक घड़ी होगी और इसे हम सॉफ्ट लैंडिंग बोलते हैं। अब तक किए गए 38 ऐसे प्रयासों में महज 20 बार ही हम इस कार्य में सफल हुए हैं।

विक्रम के चंद्रमा के धरातल पर पहुंचते ही उसमें से

एक 27 किलोग्राम और छह पहियों की अंतरिक्ष गाड़ी यानी रोवर निकलेगा। इस तीसरे हिस्से को इसरो ने नाम दिया है प्रज्ञान। प्रज्ञान लगभग एक चंद्र दिवस तक अपनी बैटरी पर जीवित रहकर चंद्रमा के दक्षिणी ध्रुव के 500 मीटर तक के दायरे तक में खोजबीन करेगा। गौरतलब है कि एक चंद्र दिवस यानी चांद पर एक पूरा दिन पृथ्वी के 14 दिनों के बराबर होता है। इन दो हफ्तों में प्रज्ञान चांद के टुकड़ों का अध्ययन करेगा, चांद की तस्वीरें लेगा और उस पर जीवन के होने या जीवन के लिए जरूरी संसाधनों पर शोध करेगा। प्रज्ञान की बैटरी समाप्त होने के बाद भी चंद्रमा की कक्षा में स्थापित हमारा ऑर्बिटर लगभग एक साल तक चांद की तस्वीरें हमें भेजता रहेगा।

चंद्रयान-2 वर्ष 2008 के चंद्रयान-1 मिशन से कही ज्यादा विकसित है। चंद्रयान-1 का मिशन सिर्फ ऑर्बिटर को चंद्रमा की कक्षा में 100 किलोमीटर की ऊंचाई पर पहुंचाना था, जबकि चंद्रयान-2 का लक्ष्य ऑर्बिटर के साथ-साथ चंद्रमा की सतह तक पहुंचना और उसकी सतह पर रोवर चलाने का है। इस मिशन के बाद हम चंद्रमा पर उतरने वाले चौथे देश और चंद्रमा के दक्षिणी ध्रुव पर पहुंचने वाला पहला देश बन जाएंगे।

चंद्रमा पर उतरने के लिए उसके दक्षिणी ध्रुव का चयन एक विशेष महत्व रखता है। यहां सूर्य की रोशनी नहीं पहुंचती है। ऐसे में इस विशाल क्षेत्र का तापमान शून्य से लगभग 250 डिग्री नीचे तक चला जाता है। अंतरिक्ष वैज्ञानिकों का मानना है कि इस क्षेत्र में जमा हुआ जल यानी बर्फ पाई जा सकती है। यदि यह सच हुआ तो आने वाले समय में मानव जाति चंद्रमा पर मौजूद इस बर्फ से जल बना कर और फिर उस जल से ऑक्सीजन निकाल कर वहां पर स्थाई रूप से रहना शुरू कर सकती है। इसी जल से हम हाइड्रोजन भी बना सकते हैं जो चंद्रमा पर हमारा ईंधन बनेगा। चंद्रयान का प्रज्ञान रोवर करोड़ों वर्ष से वहां जमी इसी बर्फ को खोजने का प्रयास करेगा। इसके अलावा चंद्रमा पर कई दुर्लभ खनिज भी हैं। इसमें टाइटेनियम, प्लेटिनम और सोना तो हैं ही, पर वैज्ञानिकों की विशेष रुचि एक नए पदार्थ पर है। यह है हीलियम-3, जो कि धरती पर न के बराबर है, लेकिन चंद्रमा पर बहुतायत मात्रा में पाया जाता है। हीलियम-3 एक रेडियो एक्टिव पदार्थ है जिससे हम फ्यूजन (विखंडन) के जरिये बड़ी मात्रा में परमाणु ऊर्जा बना सकते हैं।

मालूम हो कि चंद्रयान-2 छह सितंबर, 2019 को चंद्रमा पर दो विशाल गड्ढों के बीच मौजूद समतल पर उतरेगा। इस पूरी यात्रा का खर्च 123 मिलियन डॉलर यानी 843 करोड़ रुपये होगा, जो कि अब तक के सभी चंद्र अभियानों से काम है और हॉलीवुड की इस वर्ष की सबसे प्रचलित फिल्म 'द अवेंजर्स एंडगेम' को बनाने में आई लागत की आधी है। इस प्रकार से इसरो दुनिया में किफायती चंद्र मिशन की एक मिसाल कायम कर रहा है।

चंद्रमा पर सबसे पहला कदम रखने वाले व्यक्ति नील आर्मस्ट्रांग थे। उन्होंने चांद पर पहला कदम रखते हुए कहा था, 'एक मानव का यह छोटा-सा कदम मानवता के लिए एक विशाल छलांग है।' इसरो का चंद्रयान मिशन ऐसी ही एक और छलांग साबित होने वाला है। चंद्रयान-2 न सिर्फ भारत के तकनीकी विकास का एक उदाहरण बनेगा, बल्कि मानव जाति के दूसरे ग्रहों पर बसने के स्वप्न को पूरा करने में एक हिस्सा बनेगा। कुल मिलाकर अपोलो-11 से लेकर चंद्रयान-2 तक के चंद्रमा पर मानव के विभिन्न अभियान उस दिन की ओर बढ़ते हुए कदम हैं जब हम अपने घर के पते में चंद्रमा का शब्द जोड़ सकेंगे।

(लेखक डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम के पूर्व तकनीकी सलाहकार हैं और अंतरिक्ष विषय पर कई पुस्तक लिख चुके हैं)

response@jagran.com

## ऊर्जा

### अधीर क्यों

मनचाहा फल न मिलने पर अधीर हो जाना मनुष्य का सामान्य स्वभाव है। जब वह कर्म करता है तो फल की इच्छा को साथ ही जोड़ लेता है। प्रत्येक कर्म एक निश्चित उद्देश्य के लिए होता है। कर्म की दिशा तय करने के लिए यह आवश्यक भी है। समस्या लक्ष्य को इच्छा में बदल देने से होती है, क्योंकि कर्म और इच्छा में कोई समानुपातिक संबंध नहीं होता। आसमान में मेघ उमड़ते हैं। वे गरजते भी हैं। उनका उमड़ना, गरजना उनके बरसने को सुनिश्चित नहीं करता। ऐसा भी होता है कि उमड़ने, गरजने के बाद भी वे बरसते नहीं। बरसने के लिए कुछ तय मानक होते हैं। जब वे मानक पूरे नहीं होते तो बिन बरसे बादलों का चले जाना उनके गुण को प्रकट करता है कि वे नियति से बंधे हुए हैं। मनुष्य में यह गुण दुर्लभ है इसलिए वह बादलों की तरह चुपचाप लौटता नहीं अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। प्रतिक्रिया कम या अधिक हो सकती है, किंतु यह उसकी अज्ञानता का प्रतीक है।

जब मनुष्य में काम, लोभ, मोह, अहंकार आदि प्रबल होते हैं तो उनकी पूर्ति न होना क्रोध पैदा करता है। वह भूल जाता है कि जीवन में जो कुछ मिलना है वह निश्चित है और निश्चित समय पर ही मिलेगा। परमात्मा की कृपा के बिना कुछ भी प्राप्त करना असंभव है। मनुष्य निश्चय ही कर्म करता है, किंतु यह कर्म परमात्मा की कृपा के योग्य बनने के लिए होते हैं। एक परीक्षा में लाखों छात्र सम्मिलित होते हैं, किंतु उत्तीर्ण कुछ सौ छात्र ही होते हैं। जो सफल हुए वे परमात्मा की कृपा के योग्य सिद्ध हुए। जो असफल हुए उन्हें निराश होने के स्थान पर परमात्मा की कृपा योग्य बनने के लिए ऊर्जा केंद्रित करने की आवश्यकता होती है। जीवन भी प्रतिदिन परीक्षा है।

जब मनुष्य संयम अपना लेगा तो उसकी अधीरता स्वयं समाप्त हो जाएगी। परमात्मा पर आस्था टिकाना आ जाएगा। अपने कर्मों के साथ जब परमात्मा पर विश्वास को भी जोड़ दिया जाता है तो वे कर्म, प्रयास धर्म साधना बन जाते हैं। नदी का प्रवाह तभी बनता है जब वह अपने किनारों में बंधकर बहती है। किनारों का ध्यान न रखने पर प्रवाह टूटता है और जलराशि का अपव्यय होता है। अपने जीवन को गुणों और परमात्मा कृपा की सीमाओं में बांधने वाला ही कहीं पहुंच पाता है।

डॉ. सत्येंद्र पाल सिंह

# जल को तिलांजलि देता समाज

**फिर से**

अचानक हमारे समाज को क्या हो गया कि हमने नदियों और झील-तालाबों को कूड़ेदान समझ लिया?

सूखा। इस शब्द से शुष्क और दरार से फटी जमीन और ऊपर चिलचिलाता मेघविहीन आसमान दिमाग में कौंधता है। बारिश गड़बड़ हो जाती है तो नदी-नाले, गांव के कुएं सब सूख जाते हैं। खेत धूल से भरे कटोरों में बदल जाते हैं। जानवर और परिंदे प्यासे भटकते हैं। ऐसे में याद आता है कि हमारी सदानीरा नदियों का क्या हुआ? नदीसूत्र को हमने क्यों भुला दिया है। आखिर जिस देश ने अपने शहर नदियों के किनारे बसाए, जिस देश ने अपने पूजा-संस्कार की विधियां नदियों के किनारे और नदियों को लेकर विकसित किए, नदियां देवी मानी गईं, वहां यह सूत्र गायब कैसे हो गया? आखिर हमारे सबसे पुराने ग्रंथों, जो देवों की वाणी भी हैं, ऋग्वेद समेत तमाम वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मणों में नदियों और उसकी महिमा का विस्तार से जिक्र है तो अचानक हमारे समाज को क्या हो गया कि हमने नदियों और झील-तालाबों को कूड़ेदान समझ लिया? उन्हें सुखा देने की साजिश करने लगे। हमारे देश की हर नदी के साथ लोकगीत हैं, उनसे जुड़ी लोककथाएं हैं। थोड़ा इतिहास भी है और थोड़ा विज्ञान भी। परंपरा और रीति-रिवाज तो खैर हैं ही। ऐसे में नदियों को लेकर हम क्या सोचते हैं, नदीसूत्र उसका एक किस्म का रियलिटी चेक भी है।

नदियों के विज्ञान को लेकर विश्वविद्यालयों में होने वाली पढ़ाई में बड़ा संकट है। नतीजतन समाधान की रूपरेखा में ही परिपक्वता की कमी रही है। मसलन नदी की संकल्पना और सिद्धांत आम से लेकर खास तक के लिए स्पष्ट नहीं हैं। आमतौर पर माना जाता है कि नदी का काम पानी ले जाना है, जो आगे जाकर समुद्र में मिल जाती है, लेकिन क्या हमने कभी यह सुना है कि नदी का काम गाद ले जाना भी है? खासकर गंगा जैसी नदियों के संदर्भ में यह और भी महत्वपूर्ण है। यह बुनियादी सोच ही शायद योजनाओं और परियोजनाओं में जगह नहीं बना पाई, नतीजा फरक्का बराज जैसी परियोजनाएं होती हैं। जिसने न केवल लाखों लोगों को बेघर कर दिया, बल्कि हजारों हेक्टेयर उपजाऊ जमीन भी विसर्जित हो गई। गंगा जैसी नदी हमारी सभ्यता, हमारे पाप-पुण्य सबको संभालती रही, लेकिन आबादी और उम्मीदों के बोझ ने उसे आज हरा दिया है। अक्सर अपने गंगा की सफाई से जुड़ी परियोजनाओं और अभियानों में भ्रष्टाचार से जुड़ी कहानियां जरूर सुनी होंगी। देश के किसी भी हिस्से में नदियों और नदी घाटियों को लेकर सरकारी सोच में एक निरंतरता मिलती है यानी बड़ी परियोजनाएं बनाना और लागू करना।

असल में बड़ी परियोजनाओं का फायदा सबको मिलता है, सिर्फ नदी और उनके बेटों को छोड़कर यानी बड़ी परियोजनाएं, बड़ी राशि, बड़ा कट। बड़ी सामान्य-सी बात है, लेकिन परियोजनाएं भी वैसी बनीं और बनाई गईं और अभी भी बुनी जा रही हैं, जिनको पश्चिमी देशों ने नकार दिया है। फरक्का बराज इसी का उदाहरण है। सूखा भयावह रूप अख्तियार कर रहा है। हमें नदियों को साथ रखकर आगे बढ़ना सीखना होगा। एकआयामी विकास नहीं, बल्कि सतत विकास की ओर बढ़ना होगा, जिसमें साफ-सुथरी, जीवित और कलकल-निर्मल-अविरल नदियों की महत्वपूर्ण भूमिका होगी।

(साभार : गुस्ताख ब्लॉग में मंजित ठाकुर)

## मेलबाक्स

### कांग्रेस को उबरने की जरूरत

संजय गुप्त ने अपने आलेख 'लगातार कमजोर होती कांग्रेस' में एक सशक्त विपक्ष की दृष्टि से कांग्रेस के मजबूत होने की जो जरूरत महसूस की है, वह देश-काल-परिस्थिति के अनुरूप बिल्कुल सही है। वर्तमान में मोदी के नेतृत्व में उभरती भाजपा पुनः केंद्र की सत्ता पर विराजमान है। कुछ राज्यों को छोड़कर देश के बाकी सभी राज्यों में भी उसकी सत्ता है। जबकि दूसरी ओर विपक्षी कांग्रेस अपनी बची-खुची राज्य इकाइयों को भी बचा पाने में असहाय दिखाई दे रही है। कर्नाटक और गोवा राज्य के अवसरवादी कांग्रेसी विधायक पार्टी से इस्तीफा देकर अपने सुखद भविष्य की तलाश में जुटे हुए हैं। यह विरोधात्मक स्थिति लोकतंत्र के लिए शुभ नहीं है। माना कि स्वार्थपरक अवसरवादी राजनीति में उगते सूरज को सलाम करने का चलन है, लेकिन भारतीय राजनीति में इस चलन का एक परंपरा के रूप में विकसित होना ठीक नहीं है। राजनीति से जुड़े लोगों में सत्तासुख की लालसा उनकी दलीय निष्ठा से कहीं ऊपर दिखाई देती है। जिसकी झलक कर्नाटक और गोवा में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। निःसंदेह इस प्रवृत्ति के लिए वह नेतृत्व ही दोषी है जो अपने नेताओं में उस दलीय निष्ठा को पैदा नहीं कर पाया जो हर स्थिति में एकजुट रहकर पार्टी को मजबूत कर पाते। वस्तुतः अब समूची कांग्रेस को इस प्रश्न पर मंथन करने की जरूरत है कि क्या वह नेहरू परिवार के बिना एकजुट रहकर सशक्त विपक्ष के रूप में अपने को स्थापित कर सकती है? यदि हां! तो उसे अपेक्षित सावधानी के साथ नए नेतृत्व के चयन में देर नहीं करनी चाहिए। इससे पहले भी नेहरू परिवार से इतर सीताराम केसरी और नरसिंहा राव जैसे वरिष्ठ कांग्रेसी नेता कांग्रेस की कमान संभाल चुके हैं, लेकिन नेहरू परिवार की चाटुकारी निष्ठा से ग्रस्त कांग्रेसी नेता पर्दे के पीछे रहकर उनकी टांग खिंचाई करते रहे। अपनी डूबती कस्ती को संभालने के लिए कांग्रेस को इस बेढब स्थिति से भी बचने की जरूरत है।

डॉ. वीपी पाण्डेय, अलीगढ़

### बढ़ती जनसंख्या

गत 11 जुलाई को विश्व जनसंख्या दिवस मनाया गया। जगह-जगह कार्यक्रम आयोजित किए गए और निरंतर बढ़ती जनसंख्या पर चिंता व्यक्त की गई। लगातार बढ़ती जनसंख्या पूरी दुनिया के लिए और खासकर हमारे देश के लिए एक विकट समस्या बन गई है। दिनोंदिन बढ़ रही जनसंख्या के कारण प्राकृतिक संसाधन सिमटते जा रहे हैं। स्कूल, कॉलेज, अस्पताल और यहां तक कि भारतीय जेलों में उनकी असल क्षमता से कई गुना अधिक जनसंख्या का भार व्याप्त हो गया है। दैनिक जीवन में प्रत्येक कार्य के लिए लाइन लगाना एक परंपरा सी बन गई है। जल, जंगल और जमीन का दायरा सिमटता जा रहा है। जीव-जंतुओं के आश्रय और हमारी प्राकृतिक संपदा नष्ट हो रही है। देश में गरीबी, अशिक्षा, कुपोषण और बेरोजगारी लगातार अपने पैर पसार रही है। निरंतर बढ़ती जनसंख्या की वजह से सड़कों पर ट्रैफिक जाम से हमें हर रोज जूझना पड़ता है। सरकार को इस संवेदनशील मामले पर तुरंत विचार करना चाहिए और एक ठोस जनसंख्या नियंत्रण कानून देश में लागू करना चाहिए। विकास की रफ्तार को हम जितना मर्जी तेज कर लें जब तक देश में जनसंख्या